P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-I* ISSUE-IX* December- 2016
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

# मध्य हिमालय के उच्चवर्ती क्षेत्रों के कृषि समुदायों का पर्यावरणीय प्रभाव के कारण मौसमी प्रवासः एक अध्ययन

**हितेन्द्र सिंह**
शोध छात्र,
इतिहास एवं पुरातत्व विभाग,
हेमवती नन्दन बहुगुणा
गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर
गढ़वाल, उत्तराखण्ड

**योगम्बर सिंह फर्स्वाण**
एसोसियेट प्रोफेसर,
इतिहास एवं पुरातत्व विभाग,
हेमवती नन्दन बहुगुणा
गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर
गढ़वाल, उत्तराखण्ड

**सारांश**

प्राचीन समय से ही उत्तराखण्ड हिमालय के उच्चवर्ती क्षेत्रों में विश्व के उपोष्ण तथा शीतोष्ण प्रदेशों के उच्चवर्ती भागों की तरह ही पर्यावरणीय प्रभाव के कारण मौसमी प्रवास होता है। मध्य हिमालय के इस उच्चवर्ती क्षेत्र की जो प्रमुख जातियाँ मौसमी प्रवास तथा पशुचारण पद्धति को अपनाते हैं वे यहां की पशुचारक जातियाँ हैं। अध्ययनों से स्पष्ट है कि भ्रमणशील पशुचारण मध्य हिमालय के अनेक क्षेत्रों में होता है, जबकि पर्यावरणीय प्रभाव के कारण प्रवास सीमित क्षेत्रों में दिखाई देता है।

हिमालय के उच्चवर्ती क्षेत्रों के कृषि समुदाय जो पर्यावरणीय प्रभाव के कारण ऋतु प्रवास करती है, वह भोटिया जनजाति, खड़वाल, अणवाल, मध्य हिमालय के विभिन्न उच्चवर्ती क्षेत्रों के पशुचारक कृषि समुदाय, गद्दी, गुज्जर आदि हैं। जो वर्तमान समय में भी किसी न किसी रुप में विद्यमान है, यद्यपि इस मौसमी प्रवास में कुछ कमी आयी है, क्योंकि मध्य हिमालय के इन उच्चवर्ती क्षेत्रों में मौसमी प्रवास करने वाले समुदायों ने अपने स्थायी निवासो का निर्माण निम्न क्षेत्रों में कर दिया है। इस शोध पत्र में इन सभी जातियों के मौसमी प्रवास का विस्तृत अध्ययन किया गया है।

**मुख्य शब्द :** हिमालय, उच्चवर्ती क्षेत्रों, कृषि समुदायों, पर्यावरणीय प्रभाव, मौसमी प्रवास, पशुपालक, भोटिया जनजाति, खड़वाल, अणवाल, गद्दी, गुज्जर।

**प्रस्तावना**

विश्व के उपोष्ण तथा शीतोष्ण प्रदेशों के उच्चवर्ती भागों की तरह ही मध्य हिमालय के इस उच्चवर्ती क्षेत्र की पशुचारक जातियाँ मौसमी प्रवास, तथा पशुचारण पद्धति को अपनाते हैं। भ्रमणशील पशुचारण मध्य हिमालय के अनेक क्षेत्रों में होता है, जबकि पर्यावरणीय प्रभाव के कारण प्रवास सीमित क्षेत्रों में दिखाई देता है। हिमालय के उच्चवर्ती क्षेत्रों के कृषि समुदाय जो पर्यावरणीय प्रभाव के कारण ऋतु प्रवास करती है, वह भोटिया जनजाति,खड़वाल, अणवाल, मध्य हिमालय के विभिन्न उच्चवर्ती क्षेत्रों के पशुचारक कृषि समुदाय, गद्दी, गुज्जर आदि हैं। प्राचीन समय से ही उत्तराखण्ड हिमालय के उच्चवर्ती क्षेत्रों में पर्यावरणीय प्रभाव के कारण मौसमी प्रवास होता था, जो वर्तमान समय में भी किसी न किसी रुप में विद्यमान है, यद्यपि इस मौसमी प्रवास में कुछ कमी आयी है, क्योंकि मध्य हिमालय के इन उच्चवर्ती क्षेत्रों में मौसमी प्रवास करने वाले समुदायों ने अपने स्थायी निवासो का निर्माण कर दिया है। इस शोध पत्र में इन सभी जातियों के मौसमी प्रवास का अध्ययन किया गया है।

विश्व के उपोष्ण तथा शीतोष्ण प्रदेशों के उच्चवर्ती भागों की तरह ही मध्य हिमालय के इस उच्चवर्ती क्षेत्र की पशुचारक जातियाँ मौसमी प्रवास तथा पशुचारण पद्धति को अपनाते हैं। भ्रमणशील पशुचारण मध्य हिमालय के अनेक क्षेत्रों में होता है, जबकि पर्यावरणीय प्रभाव के कारण प्रवास सीमित क्षेत्रों में दिखाई देता है[1]। हिमालय के उच्चवर्ती क्षेत्रों के कृषि समुदाय जो पर्यावरणीय प्रभाव के कारण ऋतु प्रवास करती है, वह भोटिया जनजाति है। इसके अलावा खड़वाल, अणवाल, मध्य हिमालय के विभिन्न उच्चवर्ती क्षेत्रों के पशुचारक कृषि समुदाय, गद्दी, गुज्जर आदि हैं।

**उद्देश्य**

इस शोध पत्र मुख्य उद्देश्य उत्तराखण्ड हिमालय के उच्चवर्ती क्षेत्रों में पर्यावरणीय प्रभाव के कारण मौसमी प्रवास का अध्ययन करना है, जिसे निम्नानुसार किया गया हैः–

उत्तराखण्ड के मध्य हिमालयी क्षेत्र के कृषक पशुपालक वर्ग के लोग शीतकाल में गर्म जलवायु वाले निचले क्षेत्रों में अस्थायी प्रवजन किया करते है[2],

व भोट क्षेत्र के लोग ऋतु विशेष के अनुसार ठण्डी तथा गर्म जलवायु वाले क्षेत्रों में अपनी घोषयात्रायें किया करते हैं। शीतकाल में घोषयात्रा करने वाले पश्चिमी कुमाँऊ के पशुचारक वर्ग तथा गढ़वाल क्षेत्र का पशुपालक वर्ग ग्रीष्म ऋतु में अपने क्षेत्रों में पशुओं को चारे की कमी के कारण अपने पशुओं के साथ ऊँचाई वाले बुग्यालों में चले जाते हैं। जिनमें दूधातोली, तुंगनाथ, औली, केदारकांठा, खाम, मनणी, दयारा, हरकीदून आदि प्रमुख हैं। जीन ब्रूश ने उपत्यका में निवास करने वाले पशुचारक के प्रवास का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया है[3]।

**प्रवासी घोषयात्रा**

प्रवासी घोषयात्रा के अन्तर्गत उन पशुचारकों की दिनचर्या आती है, जो एक ऋतु विशेष में अपने गाँवो को खाली करके, अपने परिवार सहित किसी अन्य जगह पशुचारण के लिए चले जाते हैं, तथा ऋतु परिवर्तन के पश्चात् पुनः अपने मूल प्रदेश में लौट कर आ जाते हैं। उत्तराखण्ड के भोटिया समुदाय इस प्रकार की प्रवासी घोषयात्रायें करते हैं।

**घोषयात्रा**

इस वर्ग में मध्य हिमालय के उन कृषि–पशुचारकों की जीवनचर्या आती है, जो विभिन्न ऋतुओं में विभिन्न चराई क्षेत्रों में पशुओं को चराते है, लेकिन ये प्रवासी घोषयात्रियों के समान अपने गांवों को खाली नहीं करते है। इस वर्ग के राठ प्रदेश में रहने वाले पशुपालक, खड़वाल, अणवाल तथा मध्य हिमालय के उच्चवर्ती क्षेत्रों के पशुचारकों को सम्मिलित किया जाता है।

**प्रवजन**

इस वर्ग में उन पशुचारकों की जीवनचर्या आती है, जिनकी निश्चित भूमि नहीं होती है। बिना घर और बिना निश्चित भूमि वाले ये लोग अपनी सम्पत्ति अपने साथ लेकर भ्रमण करते हैं। चाहे वे पशुचारक न हो, प्रवासी या नोमाद कहलाते है। मध्य हिमालय के वनगूजर तथा डोलबा या ग्यगर खम्पा इस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं।

**ऋतु कालीन प्रवास**

ऋुतु कालीन प्रवास के अन्तर्गत उन समुदायो की जीवनचर्या आती है जो ऋतु विशेष के कारण अन्यत्र जाकर अपनी आजीविका चलाते हैं और ऋतु समाप्ति के बाद पुनः अपने मूल स्थान को लौट आते हैं।

ग्रीष्म काल में तीर्थ यात्रा मार्गों पर भार ढोने वाले गढ़वाली और नेपाली चट्टी निर्माण करके यात्रियों के पास सामग्री बेचने वाले चट्टी चौधरी तथा यात्रियों के पथ प्रदर्शक करने वाले तथा तीर्थ कृत्य कराने वाले पंडो की आजीविका यात्रा मार्गों पर ऋतुकालीन प्रवास के कारण से ही चलती है[4]।

इन प्रवजनों के अतिरिक्त भी मध्य हिमालय के कृषि–पशुचारक समुदाय प्रवजन जिनमें शीतकालीन प्रवजन, ग्रीष्मकालीन प्रवजन तथा चातुर्मासिक प्रवजन भी करते हैं। जिनका विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार से है –

**शीतकालीन प्रवजन**[5]

कृषक–पशुपालक तथा पशुचारक समुदाय अपने मूल प्रदेश में अत्यधिक शीत पड़ने के कारण मध्य हिमालय के निचले स्थानों में गर्म जलवायु वाले क्षेत्रों में आ जाते हैं। ये सभी पशुचारक कृषक समुदाय सम्पूर्ण परिवार सहित 5–6 महीनों के लिए गर्म जलवायु वाले निचले क्षेत्रों में अस्थायी प्रवजन करते हैं। यहाँ पर ये कृषि–पशुचारक समुदाय कृषि नहीं करते हैं। इन क्षेत्रों में उनके पुश्तैनी अड्डे होते हैं। कुमाँऊ के दारमा, चौदांस, व्यांस घाटी के जनजातीय वर्ग के लोग पिथौरागढ़ के धारचूला तथा जौलजीवी आदि निचले क्षेत्रों में तथा काली कुमाँऊ के चौगड़, बिसौत, भल्ली रौं, तल्ली रौं आदि पट्टियों में अपने पूरे परिवार तथा पशुओं के साथ अस्थायी प्रवजन के लिए आते हैं।

गढ़वाल में नीती–माणा के लोग चमोली जिले के निचले क्षेत्रों छिनका, बालखिला, पीपलकोटी, कोडिया, थिरपाक, गडोरा, बौंला, भीमतला, घिंघराणा, घाट, बिरही, द्यूलीबगड़, नन्दप्रयाग, कालेश्वर, पुरसाड़ी, मंगरोली, सोनला, नेग्वाड़, उत्तरकाशी जनपद के नेलंग–जादुंग के लोग डुंडा क्षेत्रों में अस्थायी प्रवजन करते हैं।

**ग्रीष्मकालीन घोषयात्रायें**

मध्य हिमालय के उच्चवर्ती क्षेत्रों में शीतकालीन घोषयात्राओं की अपेक्षा ग्रीष्मकालीन घोषयात्रायें कम मात्रा में होती हैं। ग्रीष्म कालीन घोषयात्राओं में केवल गांव के पुरूष पशुओं के साथ प्रसिद्ध बुग्यालों या चरागाहों में कुछ समय के लिये चले जाते है। जहाँ वे लोग छानी या मरड़ा या खरक बनाकर रहते हैं। ग्रीष्मकालीन घोषयात्राओं में महिलाएं नहीं जाती हैं, बल्कि वे घर के कामकाज में लगी रहती हैं। इतना ही नहीं ये लोग बीच–बीच में अपने कृषि कार्यों के लिए गाँव में आते–जाते हैं।

**चातुर्मासीय घोषयात्राएं**[6]

मध्य हिमालय के उच्चवर्ती क्षेत्रों के कृषि पशुचारक समुदाय रवी की फसल–मंडुवा, झंगोरा, आदि बोकर कुछ समय के लिए अपने पशुओं के साथ गांव से कुछ दूर बुग्यालों या चरागाहों में चले जाते हैं, तथा वहाँ खरक या छानी या मरड़ा बनाकर (चित्र सं0–7.1) सावन महीने की संक्रान्ति तक वहीं खरकों में रहते हैं। इस बीच के समय में उनके गांव के आसपास हरी घासें उग जाती है, जिस कारण वे पुनः अपने पशुओं के साथ गांव लौट आते हैं। वे गांव में कुछ समय तक रूककर पुनः खरकों में चले जाते हैं, जहाँ वे लोग सितम्बर माह तक रहते हैं। अक्टूबर में घरों में धान, झंगोरा, मंडुवा तैयार हो जाने पर ये लोग अपने पशुओं के साथ घरों को लौट आते हैं।

इस प्रकार की घोषयात्राएं गढ़वाल हिमालय के उच्चवर्ती क्षेत्रों में अधिकांश रूप से देखी जा सकती है। उत्तरकाशी जनपद में ओजरी, जखोल, खरशाली, चमोली जनपद में देवग्राम, वांण, सवाण, घेस, रूद्रप्रयाग जनपद के गौडांर, रांसी, त्रिजुगीनारायण, तोसी, चौमासी, चिलौण्ड, सारी आदि गांवों के लोग इस प्रकार की चातुर्मासीय घोषणाएं करते हैं। ये लोग पशुओं के साथ यहाँ आलू, चौलाई, राजमा, फाफर आदि की खेती करते हैं (चित्र सं0–7.2) ।

मध्य हिमालय के उच्चवर्ती क्षेत्रों में पर्यावरणीय प्रभाव के कारण ऋतु प्रवास करने वाले कृषि समुदायों का विवरण निम्न है–

**भोटिया जनजाति**

गढ़वाल में भोटिया जनजाति चमोली तथा उत्तरकाशी जनपदों में निवास करती है तथा कुमाँऊ में

पिथौरागढ़ तथा अल्मोड़ा जनपद के पर्वतीय क्षेत्रों में भोटिया जनजाति का निवास स्थान है। यह जनजाति मुख्यतः जाडगंगा (जाह्नवी), विष्णुगंगा, धौली गंगा, कुटियांगती तथा दारमा नदियों की घाटियों में फैली हुई हैं। भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में रहने के आधार पर भोटिया जनजाति को 6 समूहों में बांटा गया है। जाड़गंगा घाटी में रहने वालों को जाड़, विष्णुगंगा घाटी में रहने वालों को मारछा, घौली गंगा घाटी में रहने वालो को तोलछा, कुटियांगती घाटी में रहने वालों को शौका, गौरी घाटी में रहने वालों को जौहारी तथा दारमा घाटी में निवास करने वाले दारमी कहलाते है[7]। भोटिया एक प्रवर्जनकारी जनजाति है, जो ऋतु परिवर्तन के साथ अपने निवास स्थान को भी बदलती रहती है। भोटिया जनजाति शीत ऋतु में कम ऊँचाई वाले क्षेत्रों में आती है और ग्रीष्मकाल में अपने प्राचीन परम्परागत पैतृक गांवो में निवास करती है,जो हिमालय की ऊँची–ऊँची पर्वत श्रृखलाओं के ढ़लानो तथा घाटियों में लगभग 7000 से 12000 फीट की ऊँचाई पर स्थित है[8]।

भोट प्रदेश कुमाँऊ मण्डल में पिथौरागढ़ जनपद के धौलीगंगा क्षेत्र से प्रारम्भ होकर दारमा, चौदास एवं व्यास पट्टी, नेपाल सीमा पर छड़रू तथा टिकरगांव, जोहार परगना तथा गढ़वाल के नीती एवं माणा तक फैला हुआ है[9]।

**भोटिया जनजाति का निवास स्थल**

भोटांतिक क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से ऊबड–खाबड़, नंगी चट्टानों एवं बर्फ से आच्छादित वाला क्षेत्र है। वर्ष में लगभग छः मास ये ग्राम बर्फ से आच्छादित रहते हैं, इसी कारण इस क्षेत्र में रहना तथा अपनी आजीविका को बनाये रखना किसी के लिए संभव नही है[10]। भोटिया जनजाति के लोग अप्रैल–मई से अक्टूबर तक अपने ऊँचाई वाले क्षेत्रों में, जिन्हें ये लोग मैत कहते है, निवास करते हैं तथा अक्टूबर से मार्च–अप्रैल तक निचले क्षेत्रों जिन्हें ये लोग गुनसा कहते है, निवास करते हैं। भोटियाओं के इस अस्थायी जीवन की तुलना टर्की के पशुपालकों से की जा सकती है, जो गर्मियों में अपने पशुओं को चराते हुये अनातालिया के पठार में आवास करते हैं और शीत बढ़ जाने पर भूमध्य सागरीय तटवर्तीय मैदानों में आ जाते हैं[11]।

भोटिया लोग अपने ग्रीष्मकालीन आवासों को ही स्थायी आवास मानते हैं। शीतकालीन आवासों में इनके पक्के मकान नहीं होते हैं। शीतकालीन आवास स्थानों के मकान या तो कच्चे या अर्द्ध पक्के होते हैं शीतकालीन मकानों में खिड़की दरवाजे प्रायः छोटे आकार के होते हैं, ग्रीष्मकालीन आवास बहुधा पक्के होते हैं[12]।

भोटिया जनजाति के प्रायः दो ग्राम होते है, एक तो ग्रीष्मकालीन ग्राम जो कि उनके मूल ग्राम कहे जाते हैं। वे हिमालय की ऊँची चोटियों के ढ़लानों पर अवस्थित होते हैं और दूसरे कम ऊँचाई वाले गांव जो नदी घाटियों तथा पर्वत चोटियों की तलहटियों में स्थित होते हैं[13]। पिथौरागढ़ जनपद में जौहार, दारमा, व्यास एवं चौदास पट्टियों में ये भोटिया ग्राम स्थित हैं। गढ़वाल मंडल में चमोली जिले के विष्णुंगंगा घाटी तथा घौली गंगा घाटी तथा उत्तरकाशी जनपद में जाड़ गंगा घाटी में ये ग्राम स्थित हैं। सामान्यतः भोटियाओं के दो ही निवास स्थल होते हैं, लेकिन गौरी घाटी के जौहारी भोटिया इसके अपवाद हैं, उनके तीन निवास स्थल होते है, प्रथम निवास स्थल 3500 मी0 से 4000 मीटर की ऊँचाई में पाया जाता है। ये निवास स्थल तिब्बत सीमा के निकट होने के साथ–साथ बुग्याल एवं चारागाह के निकट होते हैं, इसमें मिलम, वुर्फू आदि उल्लेखनीय है। स्थायी निवास शरद काल में कुछ कम तीव्र जलवायु के निकट होते है, ये ग्राम 1500 मीटर से 2500 मीटर की ऊँचाई पर स्थित हैं। जौहारी भोटियाओं के तीसरे प्रकार के निवास भाबर के निकट हैं, जो कि 300 मीटर की ऊँचाई पर स्थित हैं[14]।

**भोटिया जनजाति का ऋतु प्रवास**

लघु हिमालयी क्षेत्रों में रहने वाली भोटिया जनजाति की घोषयात्राएं दो रूपों में होती हैः–

1. अस्थायी प्रवजन
2. पशुचारण।

प्रथम प्रकार के प्रवास में पूरा भोटिया परिवार अपने मैत (अपने पैतृक गाँव) से गुनसा (अस्थायी गाँव) में प्रवजन करता है। दूसरे प्रकार के प्रवजन में पालसी (भेड़पालक) अपनी भेड़–बकरियों के साथ हिमालय के बुग्यालों तथा तराई भाबर के क्षेत्रों में प्रवजन करता है[15]। प्रथम प्रकार के प्रवजन में भोटिया जनजाति के लोग शीतकाल के प्रारम्भ होते ही अपने मैत से गुनसा के लिए प्रवजन करते हैं। पशुधन सहित प्रवास पर जाना–आना कुन्चा कहलाता है। यात्रा का दिन ज्योतिषियों द्वारा निर्धारित किया जाता है। इसके बाद ही स्त्रियाँ एवं बच्चे पूरी तैंयारी के साथ प्रस्थान करते हैं। भोटिया जनजाति का मौसमी प्रवास का एक व्यवस्थित ढंग था। ये सभी लोगों, सामग्री तथा पशुओं को दो–तीन टोलियों में विभाजित करते थे, और प्रत्येक टोली का कार्य निर्धारित करते थे[16]।

इस अर्धवार्षिक प्रवजन परम्परा के अन्तर्गत भोटिया पुरूष अपने भेड़–बकरियों तथा जोबा पर सामग्री लादकर घाटियों के निचले क्षेत्रों में जाते हैं। निचले क्षेत्रों में जाते समय मार्ग में जो भी गाँव या कस्बा आता है, वहाँ अनेक सामग्रियों का विक्रय करते हुए ऋषिकेश, कोटद्वार की मंडियों तक पहुँच जाते हैं। जहाँ से वे अपने व्यापार की अनेक वस्तुओं का क्रय करते हैं। इसके बाद भोटिया नारियाँ, बच्चे कुछ विक्रय वस्तुओं को लेकर उन्हें अपने घोडों तथा जोबों में लादकर तथा कुछ सामग्री को अपनी पीठ पर लादकर अपने गन्तव्य की ओर जाते हैं। गन्तव्य पर जाते समय मार्ग पर जो भी गांव आते हैं, वहाँ सामान बेचकर अपने शीतकालीन प्रवास के लिए अन्न एकत्रित करते हैं। पश्चिमी भोटान्तिकों में प्रवासी नारियां मार्ग में पड़ने वाले गांवों के लोगों में नमक के बदले अन्न का संग्रह करती हैं[17]।

भोटिया जनजाति की अन्तिम टोली में भोटिया पुरूष वर्ग अपनी भेड़–बकरियों एवं अन्य पशुओं को गढ़वाल के निचले भागों में ले जाकर घास युक्त पहाड़ियों तथा नदी घाटियों में चराते हैं। ये पशुचारक भोटिया अपने पशुओं के साथ सम्पूर्ण शीतकाल एक पहाड़ी से दूसरी पहाड़ी पर विचरण करने में बिताते हैं। इस प्रकार से भोटिया जनजाति बड़ी कुशलता से अपने शीतकाल प्रवास

पर जाती है। इसी तरह की प्रक्रिया ग्रीष्मकालीन आवास के लिए भी की जाती है। लेकिन वर्तमान में भोटिया जनजाति क्षेत्रों में सड़कों का निर्माण हो गया है। जिस कारण से भोटिया जनजाति की यह प्रक्रिया कम ही देखने को मिलती है।

**कृषि**

मानव की मूलभूत आवश्यकता भोजन, वस्त्र तथा आवास होता है, जिसकी पूर्ति के लिए वह अतीत से ही क्रियाशील रहा है। समस्त मानव सभ्यता की प्रथम आर्थिक क्रिया कृषि रही है। परन्तु कृषि योग्य भूमि के अभाव, जलवायु की विषमता, भू स्थल का पथरीला होना एवं कृषि उत्पादन की कमी के कारण भोटिया समाज का प्रमुख व्यवसाय कभी कृषि नहीं रहा, परन्तु उदरपूर्ति एवं समाज को आत्म–निर्भर बनाने हेतु इस जनजाति ने उपलब्ध भूमि को अपने परिश्रम एवं वांछित योग्यता से जोतकर एवं बोकर अति प्राचीन काल से ही कृषि की है। अधिकांश गांवो में वर्ष में दो फसलें होती हैं[18]। बागोरी, माणा तथा धौली घाटी मे जुमा गांव से ऊँचाई वाले स्थानों में वर्षभर में केवल एक ही फसल होती है, परन्तु जुमा से नीचे वर्षभर में दो फसलें उत्पादित होती हैं। नीती घाटी के प्रवर्जन क्षेत्रों में जहाँ गेहूँ, जौ, उवा, फाफर, आदि अनाजों का अंकुर प्रस्फुटित अवस्था में रहता है, वहीं निचले भागों में जौ, गेहूँ की बालियाँ काटी जाती हैं। जुमा से ऊपर फसल जून माह में बोकर सितम्बर माह में काटी जाती है, जिसमें उवा, जौ, फाफर, गेहूँ, चीणा, ओगल, फ्रासबीन, मटर मुख्य है। सब्जियों में बन्दगोभी, शलजम, मूली, आलू व राई पैदा होती है। जुम्मा से नीचे रैणी तक स्थायी जनजाति निवासी सीमित भूभाग पर खेती करते है, जिसमें गेहूँ, जौ, उवा, फाफर, मंडुवा, चौलाई, आलू, मटर, छेमी तथा सभी प्रकार की सब्जियां पैदा होती है। सीमित भू–भाग के कारण ये लोग खेती का विस्तार करने से वंचित है[19]। जौहार घाटी में जून से सितम्बर तक नपल, ऊवा, सरसों तथा पत्थी–फाफर की इकलूलिया फसल (वर्ष भर में एक फसल) होती है, दिसम्बर से अप्रैल तक पूरा क्षेत्र बर्फ से ढके रहने के कारण यहाँ कृषि कार्य करना कठिन है। जौहार में मटर और मसूर की दाल तथा आलू की फसल भी बहुत अच्छी होती है, यहाँ आलू बोने का प्रचार सबसे पहले घनश्याम बुर्फाल के पिता ने लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व कर लिया था[20]। आज ये लोग परम्परागत कृषि उपकरणों एवं प्राचीन तौर–तरीकों से ही कृषि कार्य करते है। भौगोलिक परिस्थितियों ने इन्हें आधुनिक कृषि उपकरणों को अपनाने तथा उत्तम किस्म के बीज, खाद आदि के प्रयोग से वंचित कर दिया है। छोटे–छोटे सीढीनुमा खेंतो को एक विशेष प्रकार के देशी हल व बैलो से ही जोतना सम्भव हो पाता है[21]।

**गुज्जर जनजाति**

गुज्जर जनजाति एक पशुपालक समुदाय है, यह जनजाति उत्तराखण्ड, जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भागों एवं पंजाब तथा हरियाणा तक फैली हुई है। शताब्दियों पहले गुजरात एवं काठियावाड़ (गूर्जर प्रान्त) में गौपालक जनसमूह निवास करता था, अधिकांश विद्वान गूजर शब्द की उत्पत्ति इसी गुज्जर शब्द से तथा इसी क्षेत्र से मानतें है[22], उत्तराखण्ड़ में गुज्जर जनजाति के लोगों ने लगभग 100 वर्ष पूर्व 19 वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में प्रवेश किया था, खानाबदोश जीवन शैली होने के फलस्वरूप पूर्व में गुज्जर जनजाति के लोग उत्तराखण्ड के तराई–भाबर क्षेत्रों से मुनस्यारी, टिहरी, उत्तरकाशी, रुद्रप्रयाग तथा चमोली जिलों के उच्च हिमालयी क्षेत्रों में स्थित घास के मैदानों में पशुचारण हेतु ग्रीष्म ऋतु में जाते हैं, तथा शीत ऋतु में ये लोग अपने पशुओं के साथ वापस तराई–भाबर क्षेत्र में आ जाते हैं[23]।

गुज्जर जनजाति के इतिहास के बारे में यह धारणा है कि ''जम्मू कश्मीर के राजा हरिसिंह ने अपनी पुत्री का विवाह सिरमौर के राजा के बेटे के साथ की। राजा हरिसिंह ने अपनी बेटी के विवाह में गुज्जरों को भी आमन्त्रित किया। राजा हरिसिंह गुज्जरों की वेश भूषा को देखकर अत्यधिक आकर्षित हुए, उन्होने अपनी बेटी के साथ कुछ गुज्जरों को दहेज में हिमाचल प्रदेश भेज दिया, इस प्रकार कश्मीर से आधे गुज्जर हिमाचल प्रदेश चले गये[24]।

बी0 एन0 स्मिथ (1924) के अनुसार गुज्जर सफेद हूण जाति की एक शाखा है, जिन्होंने पांचवीं–छठी शताब्दी में भारत पर आक्रमण किया। सफेद हूणों ने अपना केन्द्र पंजाब व राजपूताना को बताया तथा बाद में ये यहीं बस गये। बाद में सफेद हूणों की सत्ता गुरजारा ने संभाली गुरजारा मध्यम वर्ग की जाति उत्तर पश्चिम भारत में है, जो अब गुज्जर कहलाते हैं[25]। कनिंघम के अनुसार गुज्जरों के पूर्वज मध्य एशियाई क्षेत्रों के रहने वाले थे, जिन्हें कनिंघम कुषाण, यूची या तोचारी जाति से सम्बन्धित मानते हैं, ए0एच0 बिंग्ले भी गुज्जरों का साम्य कुषाणों अथवा तोचारी जाति से मानते है, डी0 इवेटसन और शेरिंग का मानना है कि गुज्जर राजपूतों के वंशानुक्रम में से हैं, किन्तु बेड़न पावेल इस मत से सहमत नही हैं, उनका मानना है कि यह एक भिन्न जाति है, जो समय के साथ राजपूतों एवं अन्य जातियों के साथ प्रवास करने लगे[26]।

**अधिवास**

गुज्जर समुदाय ऋतु प्रवास करने वाला समुदाय है, गुज्जर समुदाय अपने पशुओं के साथ मार्च–अप्रैल में हिमालय के उच्चशिखरीय बुग्यालों में चले जाते हैं। यह समुदाय ऐसे बुग्यालों में निवास करते हैं, जहाँ पशुओं के लिए चारा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो तथा आस–पास ऐसी बस्ती, नगर या कस्बा हो, जहाँ यह समुदाय दूध, दही, घी आदि का व्यापार कर सके। गुज्जर समुदाय मार्च–अप्रैल से सितम्बर–अक्टूबर तक 6–7 महीने के लिए इन बुग्यालों में रहते हैं, और शीत ऋतु में निचले स्थानों अर्थात् पहाड़ की तलहटी पर चले जाते हैं।

ऋतु प्रवास करते समय गुज्जर समुदाय झुण्ड़ बनाकर चलते हैं और अपने ऋतु प्रवास पर जाते समय 20–25 दिन का समय लगाते हैं तथा अपनी आवश्यक सामग्री को खच्चरों में ले जाते है, लेकिन कुछ गुज्जर जिनकी आर्थिक स्थिति ठीक नही होती है। वे अपना सामान स्वयं ढोते हैं, और मार्ग में ऐसे स्थानों का चयन रहने के लिए करते हैं, जहाँ पर पशुओं के लिए चारा उपलब्ध हो सके, तथा साथ ही पानी की सुविधा भी हो।

कुछ वर्षो पहले तक गुज्जर समुदाय अपने समस्त परिवार तथा पशुओं के साथ ऋतु प्रवास पर जाते थे, लेकिन वर्तमान समय में इसमें कुछ परिवर्तन देखा गया है। वर्तमान समय में गुज्जर समुदाय के कुछ लोग ऋतु प्रवास नहीं करते है, बल्कि स्थायी रूप से एक ही स्थान पर रहते है तथा कुछ लोग ऐसे भी है, जो केवल अपने परिवार के कुछ सदस्यों के साथ ऋतु प्रवास पर जाते हैं।

**अणवाल समुदाय**

अणवाल उत्तराखण्ड़ के कुमाऊँ मंडल के पिथौरागढ़ जनपद की धारचूला तहसील की मल्ला–तल्ला दारमा, व्यांस तथा चौदांस घाटियों के लगभग सभी भोटान्तिक ग्रामों में निवास करते हैं[27]। प्रारंभ में यह समुदाय निश्चित रूप से भोटिया जनजाति पर पूर्ण रूप से निर्भर था। कुछ लोगों का मानना है कि ''अणवाल'' एक काल विशेष में भोटिया जनजाति के बंधुवा मजदूर थें[28]। अणवाल शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अलग–अलग धारणायें हैं, कुछ लोगों का यह मत है कि अणवाल शब्द ऊनवाला का बिगडा हुआ रूप या अपभ्रंश है, जो भेड़ से व्यापार करने तथा उनसे ऊन प्राप्त कर अपनी जीविकोपार्जन का कार्य करते थे। कुछ लोगो का यह मानना है कि दूर–दराज क्षेत्रों में अन्न का ढुलान करने के कारण इन्हें अनवाल या अणवाल कहा जाने लगा[29]। इस रूप में ये लोग भेटान्तिक शौका वर्ग के लोगों की भेड़ों को चराने का काम करते थे तथा परिश्रम के रूप में भूड़ (भत्ता) प्राप्त करते थे, कालान्तर में अणवाल भोटिया जनजाति के सिरतान (आसामी कृषक) भी हो गये थे, वर्तमान मे ये लोग क्षत्रिय होने का दावा करते हैं[30]। भोटिया जनजाति के लोगों का मानना है, कि अणवाल अल्मोड़ा जनपद के पर्वतीय क्षेत्र दानपुर से प्रवासित समुदाय है। ये जीविका पालन हेतु तथा आर्थिक उपार्जन हेतु हिमालय के पर्वत व नदी–घाटियों में आकर बस गये, इसी कारण ये लोग अपने नाम के साथ दानू भी लिखा करते है[31]।

भोटिया जनजाति के ''कारिन्दा'' होने के कारण अणवाल समुदाय का परम्परागत व्यवसाय भोटिया समुदाय के परम्परागत व्यवसाय से जुड़ा है[32]। आर्थिक दृष्टि से अणवाल भोटिया समुदाय पर निर्भर रहते हैं। अणवाल समुदाय गर्मियों में भेड़–बकरियों के साथ हिमालय के ऊँचे–ऊँचे बुग्यालों में खाद्य सामग्री को साथ लेकर चले जाते हैं, जबकि उनका परिवार भोटिया समुदाय के पास ही कृषि कार्य करते हैं, अणवाल सर्दियों में हिमालय के निचले हिस्सों में आ जाते हैं और गर्मियां प्रारम्भ होने पर पुनः मूल निवासों की ओर चले जाते है।

**खड्वाल समुदाय**

अलकनन्दा उपत्यका में टौंस से लेकर शांपू तथा नन्दादेवी शिखरपुंज के पार काली उपत्यका में पिंडर की ऊपरी शाखाओं और गौरीगंगा के मध्य में स्थित दानपुर पठार तक के क्षेत्र में खड़वाल समुदाय के लोग बसे हैं[33]।

'खड्वाल' का अर्थ खाडू से है, जो मेंडा या भेड–बकरियों को पालते हैं। 'खाडू' शब्द द्रविड़ वर्ग की भाषाओं में प्रचलित 'आडू' (भेड़–बकरी) शब्द से बना है। मध्य हिमालय (उत्तराखण्ड) में खाडू शब्द मेंडे के लिए प्रयुक्त होता है, किन्तु हिमाचल प्रदेश में द्रविड़ भाषाओं के समान भेड़–बकरी दोनों के लिए प्रयुक्त होता है।

धरातल की ऊँचाई–निचाई, भूमि की उर्वरता, पशुचारण की सुविधा और स्थानीय विशेषताओं के कारण खड्वाल प्रदेश के निवासियों की जीवनचर्या में कहीं–कहीं कुछ विभिन्नताएँ मिलती हैं। कुछ खड्वाल गद्दियों के समान मुख्यतः पशुचारक है तथा कुछ कृषक–पशुचारक, जोशीमठ के आस–पास बसने वाले जोशियाल और दुरियाल खड़वालों से भिन्न है[34]।

खड्वाल समुदाय की वेशभूषा तथा खान–पान की पद्धतियां भोटिया जनजाति की तरह ही हैं। खड्वाल समुदाय के लोग वर्षभर मुख्यतः ऊनी वस्त्र पहनते हैं। वे अपने दैनिक जीवन में लंगोटी और खुरदरी ऊन का जैकेट पहने रहते हैं। उसके ऊपर वे एक काला कम्बल जिसे कि गाती कहते हैं, पहनते हैं, जिसे बड़ी कुशलता से लपेटकर उसे लोहे या तांबे के बड़े–बड़े सुओं (सुइयाँ) से टांके रखते हैं। कुहनी से आगे उनके दोनों हाथ और घुटनों से नीचे उनके दोनों पैर नंगे रहते हैं।

गाती के ऊपर खड्वाल समुदाय कमर पर ऊनी या सूती कमरबन्ध लपेटे रखते हैं। कमरबन्ध से छाती और कम्बल के बीच जो खाली जगह बनती है, उसमें खड्वाल, अपने लिए विभिन्न प्रकार की सामग्री जैसे सत्तू, भुना हुआ भट्ट, गुड़, चिलम, तम्बाकू, तकुआ, कातने के लिए ऊन, दरांती आदि रखते हैं[35]। खड्वाल कार्यवश जब किसी दूसरे गाँव में जाता है, तो वह ऊनी मिरजई तथा चूड़ीदार (एड़ी पर तंग) ऊनी पायजामा पहनते हैं। खड्वाल समुदाय की स्त्रियाँ ऊनी 'लावा' धोती और आंगणी पहनती है।

खड्वालों के गांव ऐसे स्थानों पर बसे हुए होते हैं, जहाँ पर हिमानीपात का और पर्वतों से शिलाएं टूटने का भय कम हो तथा जहाँ से बुग्यालों, चराई क्षेत्रों और जलाशयों तक मनुष्यों और पशुओं के आने–जाने के लिए सुविधापूर्ण मार्ग हो। खड्वालों के अनेक गाँव शीतकाल में एक माह से लेकर तीन माह तक बर्फ से ढके रहते हैं, जिस कारण खड्वाल पहले से ही अपने पशुओं के लिए खाद्य सामग्री एकत्रित कर लेते हैं। इन सभी के लिए खड्वालों को बड़े–बड़े मकानों की आवश्यकता होती है। प्रत्येक खड्वाल परिवार के दो या तीन मकान होते हैं। पशुओं के लिए ये गोठ (गौशाला) या छानी का निर्माण करते हैं। जिन खड्वालों की अधिक भेड़–बकरियां होती हैं, उनके लिए घास, लकड़ी ईंधन आदि के संग्रह के लिए वे 'बुसड़ा' का निर्माण करते हैं।

खड़वाल 'मकान' की निचली मंजिल में अपने पशुओं को रखते हैं और दूसरी मंजिल का प्रयोग अपने निवास, भोजनालय और गोदाम के रूप में करते हैं। मकान, गोठ तथा छानी, सभी का निर्माण पत्थरों से किया जाता है। जहाँ 'पठाल' आसानी से प्राप्त हो जाती या उन्हें बनाने की सुविधा होती है, वहाँ इनकी छतें पठाल से छायी जाती हैं। जोशीमठ से आगे बडागांव, परसारी के आस–पास के गांवों में मकान की छत पठाल से और गोठ तथा छानी को घास–फूस से बनाई जाती हैं। उत्तरकाशी जनपद में सुक्की के निकट प्रदेश में तथा खरशाली में जहाँ देवदार की लकड़ी बड़ी सरलता से मिल जाती है

वहाँ पर मकान, गोठ और छानी को देवदार के छोटे–छोटे तख्तों से पठाल शैली में छत पर लगाया जाता है। इस क्षेत्र में मकानों की दीवारों पर भी पत्थर की अपेक्षा लकड़ी के तख्तों तथा बल्लियों का अधिक प्रयोग किया जाता है।

जोशीमठ के निकट तपोवन ही एक ऐसा क्षेत्र है, जहाँ थोड़ा सा झंगोरा, भट्ट, धान, मारसा और चीणा उत्पन्न होता है। खड्वाल समुदाय इन सभी फसलों को एक साथ प्रत्येक खेत में बो देते हैं। जिससे एक अन्न न उगने पर दूसरा अन्न उगाकर कुछ भोजन दे सकें। मुख्य रूप से गेहूँ, उवा, जौ, कार्तिक माह में बोया जाता है और आषाढ़ माह में काटा जाता है[36], जिन भागों में अधिक हिमपात होता है, उन क्षेत्रों में उवा, जौ और फाफर अप्रैल मई में बोया जाता है और सितम्बर में काटा जाता है। इन फसलों के अतिरिक्त इन क्षेत्रों में अति उत्तम आलू, छीमी, चीणा, लौकी, घिया, खीरा आदि भी उगाए जाते हैं।

**निष्कर्ष**

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हम यह कह सकने में सक्षम हैं कि प्राचीन समय से ही उत्तराखण्ड हिमालय के उच्चवर्ती क्षेत्रों में पर्यावरणीय प्रभाव के कारण मौसमी प्रवास होता था, जो वर्तमान समय में भी किसी न किसी रुप में विद्यमान है, यद्यपि इस मौसमी प्रवास में कुछ कमी आयी है, क्योंकि मध्य हिमालय के इन उच्चवर्ती क्षेत्रों में मौसमी प्रवास करने वाले समुदायों ने अपने स्थायी निवासों का निर्माण कर दिया है।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

1. कण्डारी, युद्धवीर सिंह, गढ़वाल हिमालय की भोटिया जनजाति : एक सामाजिक एवं भौगोलिक अध्ययन, पृ0 46
2. शर्मा, डी0 डी0, उत्तराखण्ड का लोकजीवन एवं लोकसंस्कृति, पृ0 50
3. डबराल, शिव प्रसाद, अलकनन्दा उपत्यका, पृ0 46
4. वहीं, पृ0 48
5. शर्मा, डी0 डी0,उत्तराखण्ड का लोकजीवन एवं लोकसंस्कृत, पृ0 51
6. वहीं, पृ0 50
7. जुयाल, शांति, 'भोटिया', पृ0 244
8. बिष्ट, भगवान सिंह, उत्तराखण्ड़ की भोटिया जनजाति, पृ0 8–9
9. बिष्ट, शेर सिंह, मध्य हिमालयी समाज, संस्कृति एवं पर्यावरण, पृ0 21
10. बिष्ट, डॉ0 भगवान सिंह, उत्तराखण्ड़ की भोटिया जनजाति, पृ0 9–10
11. शर्मा, सुभाष चन्द्र, उत्तराँचल की भोटिया जनजाति, पृ0 63
12. वही, पृ0 64
13. बिष्ट, डॉ0 भगवान सिंह, उत्तराखण्ड़ की भोटिया जनजाति, पृ0 70
14. वही, पृ0 64
15. शर्मा, डी0 डी0, उत्तराखण्ड का लोकजीवन एवं लोकसंस्कृत, पृ0 64
16. कण्डारी, युद्धवीर सिंह, गढ़वाल हिमालय की भोटिया जनजाति : एक सामाजिक एवं भौगोलिक अध्ययन, पृ0 49
17. शर्मा, डी0 डी0, उत्तराखण्ड का लोकजीवन एवं लोकसंस्कृत, पृ0 57
18. शर्मा, सुभाष चन्द्र, उत्तराखण्ड़ की भोटिया जनजाति, पृ0 188
19. चौहान, आलम सिंह रंड.पा, नीति–माणाः तोल्छा–मार्छा एवं जनजातिय परिदृश्य, पृ0 74–76
20. पांगती, डॉ0 शेर सिंह, मध्य हिमालय की भोटिया जनजाति, जौहार के शौका, पृ0 44
21. बिष्ट, भगवान सिंह, उत्तराखण्ड़ के भोटिया जनजाति, पृ0 73
22. कुमार, मनीश, जनपद चम्बा (हिमाचल प्रदेश) में जनजातीय विकास परिदृश्य तथा जनजातियों के सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन का भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन, पृ0 34
23. बिष्ट, सुरेन्द्र सिंह, हिमालय में उपनिवेशवाद और पर्यावरण, पृ0 218
24. भण्डारी, तूलिका, राजाजी नेशनल पार्क के अन्तर्गत गुजर समुदाय का सामाजिक, आर्थिक अध्ययन एवं परिवर्तन, पृ0 15
25. भण्डारी, तूलिका, राजाजी नेशनल पार्क के अन्तर्गत गुजर समुदाय का सामाजिक, आर्थिक अध्ययन एवं परिवर्तन, पृ0 15
26. बिष्ट, सुरेन्द्र सिंह, हिमालय में उपनिवेशवाद और पर्यावरण, पृ0 221
27. शर्मा, डी0डी0, उत्तराखण्ड़ ज्ञानकोष, भाग–1, पृ0 15
28. बिष्ट, डॉ0 बी0एस0, उत्तराँचलः ग्रामीण समुदाय, पिछड़ी जाति एवं जनजातीय परिदृश्य, पृ0 256
29. शर्मा, डी0डी0, उत्तराखण्ड़ ज्ञानकोष, भाग–1 पृ0 15
30. बलूनी, दिनेश चन्द्र, उत्तराखण्ड़ की जातियाँ एवं जनजातियाँ, पृ0 100
31. बिष्ट, उमेश, उत्तराखण्ड़ के भोटान्तिक क्षेत्र की जनजातियों की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्थिति का ऐतिहासिक विश्लेषण, पृ0 75
32. बिष्ट, डॉ0 बी0एस0, उत्तराँचलः ग्रामीण समुदाय, पिछड़ी जाति एवं जनजातीय परिदृश्य, पृ0 261
33. डबराल, शिव प्रसाद, उत्तराखण्ड के पशुचारक, पृ0 65
34. डबराल, शिव प्रसाद, उत्तराखण्ड के पशुचारक, पृ0 66
35. वहीं, पृ0 67
36. भट्ट, रमेश चन्द्र, जनपद चमोली में जनजातियों के सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन का भौगोलिक अध्ययन, पृ0 105